पत्रहीन नग्न गाछ



प्रफुल्ल कोलख्यान

पूछा था गुरू ने अपने शिष्यों से-- सामने क्या देखते हो? स़िर्फ उस एक शिष्य का ही उत्तर गुरू को पसंद आया था। जिस एक शिष्य ने कहा था-- गुरूजी, मुझे तो सिर्फ चिड़िया की आँख नजर आ रही है। गदगद हो गये थे गुरू जी। सभ्यता और संस्कृति के गुरूतर भार को वहन कर सकनेवाला पीढ़ी का प्रतिनिधि नायक उन्हें मिल गया था। वे अपनी गुरू-चर्या को सफल मान लेने के इस प्रसंग पर परम संतुष्ट थे। गुरू और शिष्य दोनो एक साथ उत्तीर्ण हो गये थे। आजकल की तरह, यह नहीं कि विद्यार्थी तो फेल कर गया और गुरू जी पास कर गये! एक भी विद्यार्थी के पास करने की स्थिति में गुरू की तपस्या भी उसी के साथ पास कर जाती है। गुरू हमेशा पास करनेवाले विद्यार्थी के साथ जुड़कर ही गौरवान्वित हुआ करते हैं। फेल करनेवाले छात्र की ओर उनकी नजर कम ही जाती है। ऐसे सुयोग्य विद्यार्थी के जीवन में आ सकनेवाली अनुत्तीर्णता की आशंका को निर्मूल करने के क्रम में ऐसा गुरू किसी का अंगूठा काटने से भी नहीं हिचकता है। भले ही यह अंगूठा अनंत काल तक सभ्यता और संस्कृति की चिंता करनेवालों को अपने होने का एहसास कराकर लजवाने का साधन ही क्यों न बना रहे। सभ्यता और संस्कृति में कटा हुआ अंगूठा अपने चरित बल के कारण हमेशा अमर होता है।

पास करनेवाली पीढ़ी के प्रतिनिधि नायक का अद्‍भुत उत्तर सुनकर, सहम गई थी वह चिड़िया जिसके पूरे वजूद को अनदेखा कर सिर्फ उसकी आँख को ही देख पाने को स्वीकारा था प्रतिनिधि नायक ने! विकल हो गया था वृक्ष जो रह गया था पूरी तरह अलक्षित! संतप्त हो उठा था पूरा जंगल जो कहीं दूर-दूर तक भी लेखे में नहीं लिया गया था! सन्न रह गया था पूरा ब्रह्मांड उत्तीर्ण प्रतिनिधि नायक के उत्तर से! क्योंकि ‘मा निषाद’ के युग का समापन हो रहा था और सृष्टि को सृजन के बदले शर की दृष्टि से देखने की प्रेरणावाली सभ्यता-संस्कृति की यहाँ शुरुआत हो रही थी। अपने-अपने स्वार्थ के सूत्रों से सावधानीपूर्वक बुने जाल को फैलाते और समेटते हुए संतुष्ट सिर्फ गुरू और शिष्य ही थे। आनेवाले दिन को पढ़कर वतावरण में एक नमी फैल गई थी। करुणा की नमी। करुणा

ही प्रकृति का मूल गुण है। प्रकृति की अवहेला कर कोई संस्कृति वैसे ही नहीं बच सकती है जैसे प्राकृत की अवहेला कर अंतत: बच नहीं सकी संस्कृत की मार्यादा। चाहे जितना अवशोषित किया जाये, फिर भी बची ही रह जाती है प्रकृति के आँचल में कुछ-न-कुछ करुणा। तभी तो, इतना सब हो जाने के बावजूद अपनी असह्य वेदना के साथ-साथ उस विद्यार्थी के दुर्दिन में उसके हथियारों को भी उतने ही आदर के साथ अपने पास सुरक्षित रख लिया था वृक्ष ने। उनकी धार को बिना कुंद किये वापस कर दिये जाने के संकल्प के साथ। यह जानते हुए भी कि ये वही हथियार हैं जिनके बल पर उसे अवहेलित किया गया है, बार-बार।

युग पर युग बीतते गये। फिर बुद्ध हुए। बुद्ध ने तन्वंगी करुणा को विचार और आचार के नवप्रवाह का प्राणाधार दिया। करुणा के बिना विचार मात्र वाग्विलास होता है तो आचार के बिना विचार मरीचिका मात्र बन कर रह जाता है। विचार और आचार के बिना करुणा गलदश्रु भावुकता बन कर रह जाती है। फिर गाँधी और मार्क्स हुए जिन्होंने करुणा की डोर अपने-अपने तरीके से थामे रखने की कोशिश की। आह से गान के ऊपजे होने की याद दिलानेवाले प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत हुए। दुर्दिन में आँखों से बरसनेवाली करुणा की गाथा सुनानेवाले सांस्कृतिक क्रोध की सात्विक प्रतिमूर्ति महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हुए। बहुत कुछ लेने और बहुत कम दे सकने की पीड़ा का एहसास लिए प्रेम के आधार पर ही घृणा के अधिकार का औचित्य बतानेवाले गजानन माधव मुक्तिबोध हुए। और भी बहुत सारे ज्ञात-अज्ञात व्यक्तित्व हुए जो 'सबार ऊपरे मानुष सत्य' की याद मनुष्य को दिलाते रहे। इतनी बड़ी धरती है, एक से बढ़कर एक धरती के लाल हुए। को बड़ छोट कहत अपराधू !

आज फिर बड़ी तेजी से ऐसे गुरुओं की संख्या खतरनाक ढंग से बढ़ रही है जो शिक्षार्थियों को सफलता की गारंटी के लिए सिर्फ चिड़िया की आँख पर ही नजर गड़ाने का सदुपदेश बेच रहे हैं। उनकी आँखों में सपने हैं भी तो चिड़िया की आँख के ही। यह ठीक है कि वृक्ष के फल पर उसके तथाकथित मालिक का ही हक बनता है। लेकिन क्या वृक्ष से सिर्फ फल का ही रिश्ता बनता है आदमी का? क्या द्रुमदलों की मृदु छाया में किसी ताप के ताये हुए को दो क्षण के विश्राम का अमूल्य सुयोग भी नहीं मिलता है? क्या वृक्ष रात के अँधेरे में कार्बन डाइ-ऑक्साइड को ऑक्सिजन में बदलते हुए चुपचाप अपने आस-पास के परिवेश को प्राणप्रद बनाये नहीं रखता है? आज विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय अगुआ लोगों का अपनी स्थानिक-सामाजिकता के सक्रिय संदर्भों से अलग-थलग रहना उनकी उपलब्धियों का मान चाहे जितना बढ़ाता हो उनकी लब्धियों को एक त्रासद अनुपस्थिति में जरूर बदल दे रहा है। स्थिति का निषेध करनेवाली उपस्थिति का क्या मोल! स्थिति-हीनता भीतर-ही-भीतर उपस्थिति को

अनुपस्थिति में बदल देती है। उपस्थिति में अनुपस्थिति की इस स्थिति का दंश बहुत ही विषैला होता है। इससे बड़ा प्रदूषण कोई हो नहीं सकता है। जिंदा लाश मुर्दा लाश से अधिक प्रदूषण फैलाती है। जो थोड़े-से लोग आज भी समाज को सार्थक सपना से जोड़े रखने की जिद्द की सांस्कृतिक रस्म निभाने की कोशिश में जुटे हैं वे अपने-अपने क्षेत्र में पत्रहीन नग्न गाछ बन कर रह गये हैं! व्यक्ति अधिकार को ले कर लड़नेवाले सचेत लोगों को अपने को जिंदा लाश में बदल देनेवाली इस अ-सामाजिक प्रक्रिया के विरुद्ध और अपनी उपस्थिति कायम रखने के लिए भी जरा और सचेष्ट नहीं होना चाहिए? पत्रहीन नग्न गाछ का अरण्य रोदन ही नहीं अरण्य हास भी उतना ही त्रासद हुआ करता है। मैथिली के वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री', हिंदी के नागार्जुन और 'हमारी पीढ़ी के बाबा' आज होते, तो पूछ लेता कि पत्रहीन नग्न गाछ बनती चली गई इस जिंदगी के दुर्वह बोझ को उतार फेकने की बेचैनी में घुलते हुए जनजीवन के दिन का वसंत किस दिशा से कब आयेगा!